ओ३म्

आर्य सिद्धान्त विमर्श

[प्रथम आर्य्य-विद्वत्सम्मेलन में पठित निबन्ध]

सम्मेलन तिथि—१६ से २[illegible] अक्टूबर सन् १९३३ तक

सार्वदेशिक अ० भा० आर्य्य-प्रतिनिधि सभा, देहली।
द्वारा प्रकाशित।

प्रथम वार १,००० | सम्वत् १९९० विक्रमी | मूल्य १।।)

निरुक्तकार और वेद में इतिहास

[लेखक—ब्रह्मदत्त जिज्ञासु]

सज्जन वृन्द ! वेदों में इन्द्र, मरुत्, अङ्गिरस-परुच्छेप-वसिष्ठ-विष्णु-ब्रह्मा पराशरादि शब्द अनेक बार आये हैं। इनका वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विविध रूप से किया गया है। वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही यास्क तथा उससे पूर्व नैरुक्तों ने इन शब्दों के सम्बन्ध में लेखन किया। निरुक्त का वेद के साथ साध्य साधन रूप सम्बन्ध है यह पहले देखा जा चुका है। वेदाङ्ग होने से भी निरुक्त का महत्व मानना ही पड़ेगा। यहीं तक नहीं अर्थात यह ग्रंथ वेदार्थ का प्रतिपादक है। वेदार्थ की प्रक्रिया बताना ही इसका मुख्य ध्येय है। इसी से जो बात निरुक्त के आधार पर कही जायेगी उसकी कोई अवहेलना नहीं कर सकता।

इतिहास के सम्बन्ध में जो वाद फैला हुआ है, मेरे विचार में उसमें मुख्य कारण निरुक्त में इतिहास का प्रतिपादन है। अर्थात् जब वेदार्थ प्रक्रिया का प्रतिपादक ग्रंथ निरुक्त ही स्वयं वेद में निरुक्त में स्पष्ट इतिहास बतावे तब इसको कौन वैदिक धर्मी वेदानुयायी हेय बतला सकता है। जब स्पष्ट रूप से निरुक्त में भिन्न भिन्न व्यक्तियों का इतिहास उनकी कुल परम्पराओं तथा तात्कालिक घटनाओं सहित सर्वथा स्पष्ट पाया जाता है तब यह कैसे कहा जावे कि यास्क मुनि वेद में इतिहास नहीं मानते।

मेरे विचार में निरुक्त में यत्र तत्र आये "तत्रेतिहासमाचक्षते। इस वर्णन को देख कर ही प्रायः लोगों ने वेद में 'व्यक्तियों' के इतिहास वाद की धारणा बनाई। इसी से यास्क के निरुक्त को कई एक महानुभावों ने हेय तक बतला दिया।

इसका प्रमाण "गङ्गा" मासिक पत्र के "वेदाङ्क" से दिया जाता है जो बहुत उत्तम निकला है जिसके लिये सम्पादक महोदय को हार्दिक धन्यवाद है। पर हैं वह लेख प्रायः वेद पर पूर्व पक्ष ही, जिनके समाधान का भार आर्यसमाज पर है। देखें भविष्यत् में आर्यसमाज इसके लिये क्या आयोजना करता है।

इस "वेदाङ्क" में गुरुकुल वृन्दावन के एक पण्डित महानुभाव का लेख है उस लेख के सार भूत शब्द दे देने से ही ज्ञात हो

जायगा कि जिन सज्जनों से समाधान की आशा रखनी चाहिये उनको भी कहाँ तक इस विषय में भ्रम है।

लेखक महोदय के शब्द निम्न प्रकार हैं—

(क) "यास्क का निरुक्त देखने से पता चलता है कि पुराणों के अनुसार यास्क भी वेदों में इतिहास मानते थे"

देवापि शन्तनु की कथा देते हुये लिखते हैं—

(ख) "तब शन्तनु ने देवापि से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। देवापि ने कहा 'मैं तुम्हारा पुरोहित बनूँगा और यज्ञ कराऊँगा जिससे पानी बरसेगा"।

"यह हैं निरुक्तकार यास्काचार्य के शब्द। इससे महाभारत और यास्क के उपाख्यानों में घनिष्ठता आ गई है"।

(ग) आगे—"वत् उपमावाची शब्द पर लिखते हुये (३-३) यास्क ने एक मंत्र दिया है—

'प्रियमेधवदात्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गि-रस्वत्-महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम'।

इसका वे अर्थ करते हैं—'ईश्वर जैसे तुमने प्रियमेध आदि ऋषियों की प्रार्थना को सुना है। उसी प्रकार मुझ प्रस्कण्व की भी प्रार्थना सुनो॥" हमें यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि इस मन्त्र में आये हुये सब नाम यास्क के अनुसार ऋषियों

के ही हैं। यास्क ने उनके विषय में लिखा है "प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" आदि॥

तथा च "........तत्र ब्रह्मे तिहासमिश्रमृङ् मिश्रं गाथा मिश्रं भवति"

अर्थात् वेद इतिहासों—ऋचाओं—गाथाओं से युक्त है" (गङ्गावेदाङ्क १६३२)॥

हम लेखक महोदय को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने "निरुक्त में इतिहास" पर बहुत संक्षिप्त-तथा उत्तम पूर्वपक्ष लिख दिया। यद्यपि मैं आप सज्जनों के सन्मुख बहुत से और भी पूर्व पक्ष रखता परन्तु प्रकृत विचार के लिये इतना ही पूर्व पक्ष पर्याप्त है अतः अधिक लिखने की आश्यकता नहीं।

बस इस मौलिक भ्रम का दूर करना ही मेरे इस लेख के इस भाग का अभिप्राय है। इस इतिहास वाद के ठीक समझ में आजाने से निरुक्त सम्बन्धी शेष शङ्कायें बहुत हो सुगमता से निराकृत हो जाती हैं।

अथात्र समाधिः

निरुक्तकार यास्क मुनि ने अपने ग्रन्थ में विविध वादों का वर्णन किया है—

(१) अध्यातमम् (२) अधिदैवतम् (३) आख्यान समयः

(४) ऐतिहासिकाः (५) नैदानाः (६) नैरुक्ताः (७) परिव्राजकाः (८) पूर्वे याज्ञिकाः (९) याज्ञिकाः ।

यह नौ प्रकार के वाद यास्क ने उल्लेख किये हैं। हम यहाँ पर केवल ऐतिहासिक-आख्यान पक्ष को ही लेंगे। शेष वादों के विषय में आगे लिखेंगे। निरुक्त में इतिहास शब्द ६ स्थलों में आता है। स्थलों में 'इति ऐतिहासिकाः" ऐसा है। ८ स्थलों में "आख्यान" शब्द का उल्लेख मिलता है।

इस सब का समाधान निम्नप्रकार है—

(१) हर एक ग्रन्थ की अपनी अपनी परिभाषा (Technicalities फारमूले Formulas) हुवा करती है जब तक उन पर भली प्रकार से विचार नहीं हो जाता तब तक उस ग्रन्थ के अभिप्राय को नहीं समझा जा सकता ।। व्याकरण शास्त्र को ही ले लीजिये उसमें "गुण" संज्ञा है—'अ—ए—ओ' इन तीन अक्षरों की— इसी प्रकार " वृद्धि " से व्याकरण शास्त्र में 'आ, ऐ और औ' इन तीनों को ही समझा जाता है। "बहुलं तणि" भाष्यकार पतञ्जलि "तणि से संज्ञा और छन्द का ग्रहण करते हैं", "किमिदं तणिरिति संज्ञा छन्दसोरिति" ।

व्याकरण में जहाँ जहाँ गुण-वृद्धि-तणि आदि शब्द आवेंगे वहाँ वहा पर उपयुक्त का ही ग्रहण करना होगा, न कि वैशेषिक का गुण इत्यादि। यह बात प्रत्येक शास्त्र के विषय में सर्व सम्मत है। इससे कोई नकार नहीं कर सकता।

१—यास्क की इतिहास की परिभाषा

अब इस विषय में यास्क की अपनी परिभाषा क्या है इसका निरुक्त से ही प्रतिपादन किया जाता है।

(१) निरुक्त २-१६ में दिशा के नाम बताते हुए "काष्ठा" शब्द के उदाहरण में यास्क का निम्न लेख है—

"अतिष्ठन्ती नामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्। वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्र शत्रुः॥ ऋ० १-३२-१०

"तत् को वृत्रो मेघा इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्यौतिषश्च मिश्री भाव कर्मणो वर्ष कर्म जायते ....। तत्रोपमार्थेन युद्ध वर्णा भवन्ति, अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च। तै० सं० २-४-१२-२"

अर्थात् (यहाँ इस मन्त्र में) वृत्र कौन है। नैरुक्तों के मत में "वृत्र" नाम है मेघ का। ऐतिहासकों के मत में "वृत्र" का अर्थ 'त्वाष्ट्र असुर' (त्वष्टा का पुत्र) है। जल सूर्य तथा विद्युत के मिलने से वर्षा होती है। इसमें जो यद्ध (संग्राम) का वर्णन है वह उपमारूप से है (न कि वास्तविक किन्हीं मनुष्यों का युद्ध है) इसमें अन्य हेतु भी देते हैं कि 'अहि' शब्द वाले मन्त्रों का वर्णन—

तथा ब्राह्मण वचन भी इस विषय में पाये जाते हैं। अर्थात् मन्त्रों और ब्राह्मणों में 'वृत्र' के सदृश 'अहि' को भी इन्द्र का प्रतिद्वन्दी कहा गया हैं। यहां 'उपमार्थेन युद्ध वर्णाभवन्ति' यह वचन यास्क के इतिहास की परिभाषा का एक अङ्ग है। भाव स्पष्ट है अधिक क्या लिखें।

(२) अब हमें यह देखना है कि यास्क के मत में उपमारूप युद्ध तथा अन्य इतिहास और आख्यानों को क्यों कहा गया है। इसका उत्तर यास्क स्वयं देते हैं —

"ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्या- नसंयुक्ता" नि० १०-१०

मन्त्रार्थों के द्रष्टा की आख्यान अथवा इतिहास को लेकर (आख्यानों से युक्त) मन्त्रार्थ कहने में प्रीति होती है।"

मंत्रों के अर्थों में जहाँ जहाँ आख्यान-इतिहास बनाये गये हैं वह सब उन उन ऋषियों ने ऐसा कहने की प्रीति-प्रेम के कारण से बतलाये हैं। वह वास्तविक नहीं अर्थात किन्हीं मनुष्यादि व्यक्ति विशेषों के इतिहास या आख्यान नहीं हैं। इस बात को ऊपर भी 'उपमार्थक' कह कर यास्क ने अपना हृदय समक्ष रख दिया है।

जब ग्रन्थकार स्वयं ही स्पष्ट अपना भाव बता रहे हैं तब ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय से विरुद्ध भाव लेने से से उस ग्रन्थ का यथार्थ

तत्त्व कैसे समझ में आ सकता है। व्याकरण शास्त्र में "मिदेर्गुणः" गुणान्ति संयोगादद्योः" के गुण से वैशेषिक का गुण पदार्थ तथा महाभाष्यकार का "विपरीतं तु यत कर्म तत कल्म कवयो विदुः" कल्म सज्ञा से उसके अभिप्रेत अर्थ को ग्रहण न करके वैशेषिक का गुण और कर्म अर्थ लेने वाले क्या त्रिकाल में भी यथावत अर्थ तक पहुँच सकते हैं ? कदापि नहीं।

यह "आख्यान की प्रीति" कहानी द्वारा समझाने की प्रीति मेरे विचार में विश्व भर में व्यापक है, जैसा कि देखा जाता है बच्चों को स्वभाव से ही कहानी सुनने में प्रीति होती है। वह माता पिता को बार बार कहते सुनाई देते हैं "माता जी कहानी सुनाओ !" रात्रि को सोते समय प्रायः यह बात सर्वत्र देखी जाती हैं।

और देखिये ! व्याख्यानों में भी—अथवा सामान्य पाठ पढ़ाने में भी इसी प्रीति का अवलम्बन देखा जाता है। वही व्याख्यान वा पाठ अधिक सरल तथा सर्व ग्राही समझा जाता है जिसमें कोई दृष्टान्त हो (परन्तु आजकल तो मर्यादा से बहुत अधिक दृष्टान्तों की भर मार तथा वास्तविक तत्त्व का प्रायः अभाव रहने से ग्राह्य नहीं केवल हंसी मजाक का प्रेमी बना देना बहुत हानि कर है)। शुष्क युक्तियाँ मात्र तो केवल तार्किक लोग ही सुनने को तय्यार होंगे॥

इसी बात का प्रति पादन पुनः निरुक्त १०-४६ में "ऋषेर्दृष्टा-

र्थस्य प्रीतिं भवत्याख्यान संयुक्ता" किया है। इस से स्पष्ट है—कि "यास्क मुनि मन्त्रों में आख्यान के कथन को ऋषियों की इस (आख्यान) रूप में कहने की प्रीति ही कारण बतलाते हैं, न कि वास्तविक आख्यान।"

(३) इन आख्यानों में व्यक्ति विशेषों का ही इतिहास होता है यह बात नहीं। इसके लिये निरुक्त ५-२१

"आह्वयदुषा अश्विना वादित्यैाभिग्रस्तायैं तामश्विनौ प्रमुमुचतुरित्याख्यानम्।"

अर्थात् उषाने अश्वियों को बुलाया। आदित्य ने उसको अभिग्रस्त किया हुआ था। उसको अश्वियों ने छुड़ाया। ऐसा आख्यान (इतिहास) है।"

सायंकाल के समय सूर्यास्त से पूर्व उषा को सूर्य अभिग्रस्त किये हुये होता है। उस को अश्वि मुक्त कराते हैं। सो "अश्विनौ" कौन हैं सो इस विषय में भी अपनी कल्पना न लिख कर हम यास्क के शब्दों में ही देते हैं—

तत् कावश्विनौ? द्यावापृथिव्या इत्येकेऽहो रात्रावित्येके। सूर्याचन्द्रमसा वित्येके राजानौ पुण्यकृता वित्यैतिहासिकाः"

अर्थात् "वह अश्विनौ" कौन हैं। वह द्यावा पृथिवी हैं कुछ

आचार्य ऐसा मानते हैं। दूसरे आचार्य कहते हैं, नहीं 'अश्विनौ दिन और रात्रि का नाम है। तीसरे आचार्य इन दोनों अश्वियों को सूर्य और चन्द्रमा बतलाते हैं। इधर ऐतिहासिक (इतिहास को मानने वाले) लोग इन्हीं आश्वियों से "पुण्य शीलदो राजा" ऐसा अर्थ लेते हैं"॥

इसी प्रकार अत्यन्त भी है —

(१) "द्यावा पृथिवी वा अश्विनौ।" काठक सं० १३-५॥

(२) "इमे हवै द्यावा पृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ।"

शा०४-१-५-१६ ॥

(३) "अहो रत्रे वा अश्विनौ।" मै० सं० ३-४-४ ॥

(४) "अश्विनावध्वयूं।" शा० १-१-२-१७

सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ।
अहोरात्रौ च तावेव स्यातो तावेव रोदसी ॥१२६॥
अश्नुवाते हि तौ लौकाञ् ज्योतिषा च रसेन च।
पृथक् पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥१२७॥

(५) वृहद्देवता

यह सब प्रमाण निरुक्त के पूर्वोक्त स्थल की पुष्टि में ही दिये गये हैं।

अतः "तामश्विनौ प्रमुमुचतुः" का अर्थ उस उषा को "अश्विनौ" दिन और रात्रि ने मुक्त किया। रात्रि आने पर ही उषा का प्रादुर्भाव होता है, उधर दिन होने पर।" यहाँ निरुक्तकार के आख्यान का स्वरूप ज्ञात हुआ कि 'उषा' को अश्वियों ने छुड़ाया। क्या उषा व्यक्ति विशेष का नाम है ?

(४)

"पिता दुहितुर्गर्भमाधात्" ऋ० १-१६४-३३

पिता दुहितुर्गर्भं दधाति, पर्जन्यः पृथिव्या ॥

निरुक्त ४-२१

यहाँ पिता और दुहिता शब्द यौगिक हैं। रूढ़ि नहीं यह बात स्वयं यास्क ने पर्जन्य=मेघ और पृथिवी यह दोनों अर्थ निर्देश करके बतला दी।

यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि पिता-पुत्र-दुहिता मातादि शब्द केवल लौकिक माता पिता परक ही नहीं होते अपितु इनके अर्थ अनेक प्रकार से होते हैं। उधर जड़ पदार्थों के लिये भी पुत्रादि शब्दों का प्रयोग यास्क ने किया है। तद्यथा—

(१) निरुक्त० ८-५

तनूनपादाज्यमिति कत्थक्यः। नपादित्यनन्तरायाः प्रजाया नाम धेयं निर्णततमा भवति। गौरत्र

तनूरुच्यते । तता अस्यां भोगाः तस्याः पयो जायते पयस आज्यं जायते ॥"

अर्थात् कात्थक्य आचार्य के मत में तनूनपात् आज्य (घृत) का नाम है । नपात् अन्तरापत्य प्रजा का नाम है । यहाँ तनू का अर्थ है गौ । क्योंकि उसमें भोग विस्तृत होते हैं (दुग्ध दधि रूप में) उससे दूध उत्पन्न होता है और पयः (दुग्ध) से घी निकलता है अतः घृत गौ का पौत्र है । इससे स्पष्ट है निरुक्तकार पुत्र पौत्रादि शब्दों का प्रयोग जड़ वस्तुओं में भी मानते हैं । अतः पुत्र पौत्रादि शब्द आ जाने से इतिहास की घबराहट में पड़ने की अवश्यकता नहीं ।

(५) शेष रहा ब्राह्मणादि में इतिहास का वर्णन इस सम्बन्ध में भी मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर यास्क के अपने ही शब्द देता हूँ —

...यथो एतद् ब्राह्मणं भवतीति, बहुभक्ति वादीनिहि ब्राह्मणानि भवन्ति ।" नि० ७-२४

अर्थात्—ब्राह्मणों का इस प्रकार जो कथन है वह भक्ति वाद को लेकर है—अर्थात् किन्हीं गुणों को लेकर वैसा कहा गया है । वास्तविक घटनायें इस प्रकार की हुई हैं यह बात नहीं । यहाँ पर इतना ध्यान रहे कि ब्राह्मण सर्वांश में भक्ति वाद को लेकर कहता

हो ऐसा नहीं। न हीं यास्क का ऐसा अभिप्राय है। क्योंकि निघण्टु तथा निरुक्त में आये हुये अनेक शब्द इसका प्रमाण हैं जिनका ब्राह्मणों में भी उसी प्रकार से व्याख्यान किया गया है। वास्तव में यास्क के इन शब्दों का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं। इतने से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि में आये हुये इतिहासों को यास्क कैसा मानते हैं।

(६) मूल निरुक्त के यह सब प्रमाण हमने दिये जिससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इतिहास के विषय में निरुक्तकार उपमार्थ—आख्यान की प्रीति, मात्र ब्राह्मणों के आधार पर बहुभक्ति वाद—मानते हैं।

अब इस प्रसङ्ग में यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि जब यास्क जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है कि " पुरुष विद्यानित्यत्वात् " तथा "ब्रह्म स्वयंभूः अभ्यानर्षत् " "नियत वाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्यो भवन्ति।" यह कह कर वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। तब वह वेद में अनित्य इतिहास मान ही कैसे सकते हैं ? जो कहा जाता है। "वह गौणिक-उपमा रूप-औपचारिक" है सो इस विषय का मूल हमने निरुक्तकार के अपने शब्दों में बतलाया।

२–निरुक्त के आधार ब्राह्मण अरण्यक,तथा वेद में इतिहास

इस विषय में मैं बहुत संक्षेप से निरुक्त की पुष्टि में कुछ एक स्थल निर्देश कर देना ही पर्याप्त समझता हूँ—

(१) निरुक्त २, १६ की उपर्युक्त वृत्रासुर की कथा पर स्वयं 'ब्राह्मण' क्या कहता है देखिये। शतपथ ११, ६, १९, में लिखा है—

"तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद् देवासुरमिति।" पृ० ५५

अर्थात् 'वृत्रासुर' युद्ध हुआ नहीं अपितु उपमार्थ युद्ध का वर्णन है। यह शतपथ के लेख से सर्वथा स्पष्ट है।

(१) "प्रजापतिः स्वां दुहितारमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येन यास्यामिति सम्बभूव। स वै यज्ञ एव प्रजापतिः॥ शतपथ १-७-४-४

(२) प्रजापति वैं स्वां दुहितारमभ्यध्यदुषसम्॥ मै० सं० ३-६-५। ४-२-१२; (मनुस्मृति मेधातिथि भाष्येऽपि १-३२)॥

(३) सः (प्रजापतिः = संवत्सरः = वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनं समभवत्॥ शा० ६-२-१-४॥

(४) प्रजापतिर्वै स्वां दुहितारमभ्यधावद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये ॥ऐ ब्रा० ३-३३॥

प्रजापति की इस कथा का वर्णन ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २९७ में ऐसा ही है जैसा कि इन ऊपर के प्रमाणों में है। इस से इस प्रकरण के इतिहास को ब्राह्मणकार उषा सूर्यादि नित्य पदार्थ परक ही बतलाते हैं। यह इन उपर्युक्त उद्धरणों से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है।

(३) शतपथ ब्राह्मण के ८ म काण्ड के प्रथम तीन ब्राह्मणों में—यजुर्वेद अध्याय १३ के ५४ मन्त्र के व्याख्यान में मन्त्र में आये 'वसिष्ठ' आदि शब्दों का स्वरूप शतपथ कार बताते हैं—

(१) "वसिष्ठ ऋषिरिति (य० म० १३-५४) प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिर्यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथ यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः...... ।"

(२) "भारद्वाज ऋषिरिति (य० १३-५५), मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भारद्वाज ऋषिः"॥

(३) "जमदग्नि ऋषिरिति। चक्षुर्वै जमदग्नि ऋषिर्यदनेन जगत् पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षु-र्जमदग्निऋषिः ॥"

(४) "विश्वामित्र ऋषिरिति—श्रोत्रं वै विश्वा-मित्र ऋषिर्यदनेन सर्वतः शृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः॥"

(५) "विश्वकर्मा ऋषिः वाग्वै विश्वकर्म-र्षिः। वाचा हीदं सर्वं कृतं तस्माद्वागविश्व कर्मा ऋषिः.... ।"

इन उद्धारणों में "वसिष्ठ" ऐसा मूल यजुः का पाठ है मन्त्र नम्न प्रकार है —

"वसिष्ठ ऋषिः प्रजापति ऋषि गृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥"

यहाँ पर शतपथ ब्राह्मण में वसिष्ठ ऋषि का अर्थ प्राण भरद्वाज का मन। जमदग्निः का चक्षुः। विश्वा मित्र का श्रोत्र और विश्वकर्मा का वाग् अर्थ किया गया है। और अपनी ओर से ही वसिष्ठ ऋषि का अर्थ प्राण किया हो यह बात नहीं अपितु मन्त्र में आये हुए शब्दों का ही क्रमशः व्याख्यान किया गया है। इस सम्पूर्ण प्रकरण को पढ़ जाने

से इस में वसिष्ठादि से इन भौतिक पदार्थों का ही ग्रहण किया गया है और कुछ भी नहीं। अतः इससे स्पष्ट है कि—ब्राह्मण कार संहितान्तर्गत वसिष्ठादि शब्दों को व्यक्ति विशेष नहीं मानते। यही दिखाना हमको यहाँ अभिप्रेत है।

३—शतपथ भाष्यकार हरिस्वामी

(१) "यद्यपि किञ्चिदनित्यार्थं वचनमिव दृश्यमाने ततो पृद्यंति दर्वाक् (?) प्रवृत्तवा ग्रन्थस्याशो कथायतिः—

वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिष (?) इत्यादि तदपि नैरुक्त दिशा प्रवाह नित्यं एष विद्युदादि व्यवहार वाचित्वेन, इतिहासिक दिशा वा सर्व वृत्तान्तनामेव शीतोष्ण वर्षाद्या वर्त्तवद्याथा काल वर्त्तमानानां अनाद्यनन्तानां वेदेन कर्म कालेऽतीत रूपेण प्रतिपादनात् आदेशः (भूमिका उपसंहारे पृ० १४)

(२) "एवमपि (इति)हास दृष्ट्याऽपि व्यवहारं मुक्त्वा नैरुक्त दृष्ट्या प्रत्यक्षमिन्द्रवृत्र व्यवहारं दर्शयन्नाह—

"तद् वा एते देवा इति।" अत्र च वृत्रह आदित्योऽभिप्रेतः। वक्ष्यति हि "तद्वाह एष एवेन्द्रो य एष तपति" तस्य वृत्रं हनिष्यतो यज्ञमिदमुपायभूतं..........। (पृ १६०)

(३) अधि दैविकं सूक्ष्मार्थं दर्शयति॥—पृ० ७१

(५) उपनिषद् तथा अरण्यक (प्रायः) मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं। उनमें तो इस विषय के अत्यधिक प्रमाण मिलते हैं। यहाँ केवल तै० आ० का एक स्थल ही दिया जाता है :—

इन्द्रः परमेश्वरः मेधातिथिरग्निः। अहल्या वाक्। कुशिकः अग्नि। ऐतिहासिकास्त्वाहुः। भट्टभास्कर भाष्य पृ० १०२।

इस प्रकार ब्राह्मण तथा आरण्यकों की परम्परा में भी इन इतिहास परक शब्दों का अर्थ नित्य पदार्थों में लगाया गया है। यही संक्षेप से दिखाना हमारा लक्ष्य था। इस विषय की अतीव मनोग्राही व्याख्या वेदों के प्रौढ़ विद्वान् श्रद्धास्पद श्री० पं० शिवशङ्कर जी कृत "वैदिकेतिहासार्थ निर्णय" में देख सकते हैं। यहाँ निरुक्त से सम्बन्ध रख वनोली बात ही हमने केवल लिखी है।

४—यास्क के अनुवर्त्ती नैरुक्तचार्यों की ऐतिहासिक परिभाषा का स्वरूप

यास्क के पश्चात् अनेक आचार्यों ने निरुक्त का व्याख्यान किया इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। सामान्य तया प्रसिद्धि तो इतनी ही है कि दुर्ग ने निरुक्त पर टीका लिखी। परन्तु अब विविध महानुभावों की खोज से इस विषय के लगभग ६-७ आचार्यों का ज्ञान हमको प्राप्त हो रहा है। जो निम्न प्रकार है—

(१) निरुक्त वार्तिक (इसका वर्णन पूर्व पर कर चुके हैं)

(२) वर्वर स्वामी (देखो स्कन्द निरुक्त भाष्य)

(३) स्कन्द महेश्वर

(४) दुर्ग

(५) श्री निवास (देखो देवराज यज्वा निघण्टु)

(६) नागेशोद्धृत निरुक्त भाष्य (वैयाकरण भूषण)

(७) वररुचि निरुक्त समुच्चय।

इतने नैरुक्त प्रक्रिया के आचार्यों का हम को इस समय तक पता लगा है। अन्य भी इस प्रक्रिया पर न जाने कितने ग्रन्थ लिखे गये होंगे। परन्तु काल के चक्र और हम भारत वासियों के प्रमाद के कारण न जाने कितने ग्रन्थ नष्ट हो गये तथा इस समय भी पर्याप्त प्रयत्न न होने से नष्ट होते जा रहे हैं।

महाभाष्य पर सब से प्रथम जो ग्रन्थ लिखा गया वह "भर्तृहरि" की टीका है जिसका असली हस्त लेख जर्मनी में है, उस के फोटो भारत वर्ष में भी एक दो स्थानों में हैं। उसके पृ० ४२ पर निम्न पाठ है —

(८) "निरुक्ते त्वेवं पठ्यते। विकार मस्यार्येषु भाषन्ते शव इति तत्रायमर्थः क्रियते। अचप्रत्ययान्त स्य यो विकार एकदेशस्तमेव भाषन्ते न शवति सर्व प्रत्ययान्तः प्रकृतिमिति।"

इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि भर्तृहरि किसी निरुक्त के भाष्य को लक्ष्य में रख कर ही "तत्र अयमर्थः क्रियते...ऐसा लिखते हैं। इससे यास्क के पश्चात् वर्त्ती नैरुक्त आचार्यों की संख्या ८ हो जाती है। इन सब आचार्यों के ग्रन्थ यदि मिल जावें तो यह निश्चय से कहा जा सकता है कि वेद विषयक अनेक रहस्य खुलें। तथा स्वामी दयानन्द जी महाराज की धारणाओं के लिये अधिक से अधिक प्रमाण मिलें।

इन सब के उद्धरण हम प्रकृत विषय में नहीं दे सकते क्योंकि जब ग्रन्थ ही उपलब्ध नहीं तो उद्धरण कहाँ से दिये जा सकते हैं। जो ग्रन्थ मिलते हैं वह तीन ही हैं प्रथम "वर रुचि" आचार्य का "निरुक्त समुच्चय", द्वितीय स्कन्द स्वामी तृतीय दुर्ग।

आचार्य स्कन्द स्वामी वर्त्तमान में उपलब्ध होने वाले वेद भाष्य कारों में सर्वतः प्रथम हैं। अतः ऐसे योग्य आचाय के निरुक्त भाष्य को हमें अधिक आदर और सन्मान की दृष्टि से देखना होगा। तथा हमारे प्रकृत विषय में जितनी उपयुक्त सामग्री हमें स्कन्द के निरुक्त भाष्य में मिलती है इतनी कहीं नहीं। अतः इन से पूर्व वर्त्ती प्राचीन 'आचार्य वररुचि' के "निरुक्त समुच्चय" जिसको स्वयं स्कन्द ने उद्धृत किया है—का प्रमाण भी हम पीछे प्रस्तुत करेंगे।

स्कन्द स्वामी का काल सन् ६३० निश्चित किया जाता है। दुर्ग के विषय में भिन्न २ मत है पर हम दुर्ग के प्रमाण स्कन्द तथा वररुचि से पीछे देंगे।

५—स्कन्द स्वामी और वेद में इतिहास

आचार्य स्कन्द स्वामी की निरुक्ति टीका पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से सम्पूर्ण छप चुकी है जिसके फरमें मेरे पास हैं। मै कह सकता हूँ यदि उक्त ग्रन्थ मुझे न मिला होता तो मैं निरुक्त सम्बन्धी अपनी सम्पूर्ण धाराणाओं को इतने बल पूर्वक इस रूप में आप सज्जनों के सन्मुख न रख सकता।

जिस "देवापि और शन्तनु" की कथा को लेकर विदेशीय तथा एतद्देशीय विद्वान् भ्रम में पड़ जाते हैं जैसा कि इस लेख के आरम्भ में दर्शाया जा चुका है—

इस प्रकरण का कैसा मनोरञ्जक व्याख्यान आचार्य स्कन्द-स्वामी करते हैं—

(१) "अथवा ऋष्टिः रेषणा हिंसा च कामादीनाम्, अन्तश्चरश्शत्रूणां सेना समुदायः, सचेन्द्रियणाम् । एतदुक्तं भवति–विषयाभिलाष मुख्यात् कामादि चित्त मल रेषप्रधाना सेना इन्द्रिय ग्रामो यस्य, दूषिता वा प्रेशिता वा गता, पराङ् मुखी भूता प्रत्याहारेण विषयेभ्य इन्द्रिय सेना यस्य ।" पृ० ७३ ।

अर्थात्—ऋष्टिषेण उसका नाम है जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से पृथक हो चुकी हों ।

(२) "नित्य पक्षे ऋग्द्वयस्यान्यदर्थ योजना-आर्ष्टिषेणः ऋष्टिषेणो मध्यं तत्र भवत्त्वाच्चार्ष्टिषेणो विद्युत् । तस्य पार्थिवात्मावस्थितस्य होतृत्वेन देवापि त्वम् । शिष्टो मन्त्रः पूर्व वद योज्यः" ॥ पृ० ७७ ।

अर्थात् "नित्य पक्ष में दोनों ऋचाओं (ऋ० ९८-१७ की नित्य पक्ष में अर्थ की योजना करनी चाहिये जो निम्न प्रकार

है—ऋष्टि षेण मध्यम का नाम है। उसमें रहने वाला मध्यमस्थानी हुआ। आर्ष्टिषेण, सो नाम है विद्युत् का। वह जब पार्थिवरूप से अर्थात् पृथिवी में वर्त्तमान होता है तब उसका होता रूप से देवापित्व देवापिपन होता है। शेष मन्त्र की योजना पूर्ववत् कर लेनी चाहिये।"

(३) "देवापिर्विद्युत्। शन्तनुरुदकं वृष्टिलक्षणम्। यत् यदा देवापि वैद्युतः शन्तनवे वृष्टिलक्ष्यणमस्योदकस्यार्थाय, पुरोहितः पूर्वं हि विद्योतते पश्चादुदकं........पूर्व वद् योज्यम्"

अर्थात् देवापि यहाँ विद्युत का नाम है और शन्तनु उदक = जल का नाम है। वृष्टि रूप जल विद्युत् से ही बरसता है। इस देवापि विद्युत् को मन्त्र में 'पुरोहितः' लिखा है। इसको स्कन्द स्वामी बताते हैं—"पूर्वं हि विद्योतते पश्चादुदकम्।" पहिले विद्युत चमकती है तब वर्षा होती है, अतः देवापि-विद्युत् पुरोहित कहलाता है।... .. आगे पूर्व वत् योजना कर लेनी चाहिये।

(४)

"अथवा कश्चिद् राजा जायमानोऽनावृष्ट्या क्षतसेन ऋष्टि सेन उच्यते।" पृष्ठ ७८—

अर्थात् जिस राजा की सेना अनावृष्टि से हत हो जावे उसको ऋष्टिषेण कहते हैं।

(५) देवापि-शन्तनु की सारी कथा के नित्य अर्थ की योजना स्कन्द स्वामी ने दर्शा दी जिससे वेद में इतिहास का निरुक्तकार यास्क का क्या स्वरूप है यह भली भाँति ज्ञात हो गया। परन्तु एक इस कथा की योजना सङ्गति (जिसको आजकल के हतबुद्धि लोग खींचा तानी बतलाते हैं) लग जाने से सम्पूर्ण निरुक्त शास्त्र की कथाओं, यद्वा वेद में आये हुये ऐसे सर्व स्थलों का समाधान नहीं हो जायगा। ऐसी आशंका को मन में रखकर ही आचाय स्कन्द स्वामी ने सुहृद् हो कर—इतिहास की परिभाषा का स्वरूप कैसे उत्तम शब्दों में दर्शाया है—

(५)

"एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। तथा च वक्ष्यति। तत् को यम यमी (नि० १२-१०) वृत्रः, मेघा इति नैरुक्ताःइत्यादि। मध्यमश्च मध्यामिकां च वाचम् इति नैरुक्ताः। औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थे तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।" पृ० ७८॥

अर्थात्—इसी प्रकार जिन जिन मन्त्रों में आख्यान-इतिहास का स्वरूप वर्णन किया गया है उन सब मन्त्रों की यजमान परक-अथवा नित्य पदार्थों में योजना कर लेनी चाहिये। यह निरुक्त शास्त्र का सिद्धान्त है। जैसा कि आगे आचार्य (यास्क) कहेंगे। वृत्र कौन है? नैरुक्तों के मत में वृत्र का अर्थ है मेघ (सरण्यु से एक जोड़ा पैदा हुवा—यम और यमी) ये यम और यमी नैरुक्तों के मत में मध्यम (विद्युत) और माध्यमिक वाक् का नाम हैं। ऐतिहासिकों के मत में इसका अर्थ यम, यमी कहा गया है। इत्यादि ..... मन्त्रों में इतिहास, आख्यान का सिद्धान्त औपचारिक अर्थात् गौण है। वास्तव में तो नित्य पक्ष ही मन्त्रों का विषय है"।

हमारे विचार में इससे बढ़कर और स्पष्ट क्या साक्षी हो सकती है। केवल "देवापि और शन्तनु" को विद्युत् और जल बना कर इन मन्त्रों या सूक्त की ही सङ्गति नहीं दिखाई अपितु सारे निरुक्त शास्त्र का सिद्धान्त इस विषय में प्रतिपादित कर दिया। "एष शास्त्रे सिद्धान्ता" 'परमर्थं तु नित्यपक्ष इत्येव सिद्धाम्" क्या ये उद्धरण कुछ भी टिप्पणि की अपेक्षा रखते हैं?"

६—निरुक्त समुच्चय।

अत्यन्त प्रसन्नता तथा आश्चर्य की बात है कि 'वररुचि आचार्य के हस्त लिखित ग्रन्थ "निरुक्त समुच्चय" जिसका

मैंने ऊपर वर्णन किया है में भी आचार्य स्कन्द स्वामी के उपर्युक्त शब्द पूर्व के ही सर्वथा अनुरूप एक जैसे मिलते हैं। यह ध्यान रहे कि इस 'निरुक्त समुच्चय' ग्रन्थ को स्कन्द स्वामी ने निरुक्त भाष्य में उद्धृत किया है। लेख निम्न प्रकार है—

"औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्व-विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एव इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः" (हस्तलिपि १४२)

अर्थात्—मन्त्रों में इतिहास औपचारिक (गौण) है। क्योंकि इतिहास मानने से वेद के नित्यत्व में विरोध हो जायगा। परमार्थ से तो नित्यपक्ष ही (ठीक) है यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है॥ सर्वथा वही स्कन्द स्वामी जैसे ऊपर के शब्द हैं जैसे दोनों ने सम्मति कर के ही लिखा हो। यह है वेद में इतिहास विषय की नैरुक्तों की परिभाषा का स्वरूप। इन दोनों प्रमाणों से सिद्धान्त रूप से ऐतिहासिक पक्ष का औपचारिकत्व गौणत्व सूर्य के प्रकाश की भाँति सिद्ध है। हम समझते हैं पक्षपात रहित विद्वानों को नैरुक्तों के इस सिद्धान्त को मानने में यत् किञ्चित् भी ननु नच न होगी। हाँ जो इस पर भी न मानें तो उसमें तो कहा ही है—

"ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति"॥

अब हम विद्वानों के मनोरञ्जनार्थ इन दोनों ग्रन्थों के आवश्य-

कीय कुछ स्थल और रख देते हैं जिससे यदि कोई कहे कि न जाने एक आध स्थल प्रक्षेप ही हो गया हो या कुछ और...—इस विचार का भी कुछ स्थान न रह जावे—

आचार्य वररुचि के शेष स्थल

(२) १४१—ऊपर वाले उद्धरण से पूर्व ऋ० १०-९५-१४ "सुदेवोऽद्य" के व्याख्यान मे—

"एवमितिहास पक्षे योजना। नैरुक्त पक्षे तु पुरुरवाः मध्यमस्थानः वाय्वादीनामेकत्वात् पुरु रौतीति पुरुरवा, उरुवशी विद्युत विस्तीणमन्तरिक्षं अश्नुत इति उर्वशी वर्षा काले विद्युति ...

यहाँ पुरुरवा को मध्यम स्थानी—उर्वशी को विद्युत् बताया।

३ पृ० १४६-१४७—" ओ चित् सखायं सख्या विवृत्यां ... " ऋ० १०-१०-१

प्रथमं तावदैतिहासिक मतानुसारेण मन्त्रो व्याख्यायते... एवमैतिहासिक पक्षे योजना नित्य पक्षे तु [नि० १२-१० मध्यमं च माध्यमिकां च

वाचमिति नैरुक्ताः । यमं च यमीं चेत्यैतिहासिकाः]
यमी मध्यमस्थाना वाक् । यमश्च मध्यमस्थानः ।
सा यमी वर्षाकाले मध्यमस्थानाभिमुख्येन सहायं
सह स्थानयोगात्........एवं नित्यता विरोधेन
योज्यम् ।"

अर्थात्—यम-यमी मध्यमस्थानी हैं। वेद के नित्यत्व में विरोध न आवे इस प्रकार योजना कर लेनी चाहिये।

(४) पृ० १३२—"अर्थाभि व्यक्त्यर्थमस्यां प्रथमं तावदाख्यानं प्रस्तौति"।

अर्थ को स्पष्ट करने के लिये आख्यान-इतिहास प्रस्तुत करते हैं। यह सब प्रमाण भी आचार्य 'वररुचि' की वेद में इतिहास की परिभाषा-भावना के स्वरूप को विस्पष्ट दर्शा रहे हैं। आचार्य स्कन्द स्वामी के इस विषय के अनेक स्थलों को हम इस समय लेख बढ़ जाने के कारण छोड़ देते हैं।

७—दुर्गाचार्य और इतिहास

दुर्ग ने यद्यपि निरुक्त के अनेक स्थलों में ऐतिहासिक पक्ष की पर्यालोचना बहुत उत्तम रीति से की है, परन्तु जिस स्पष्टता से आचार्य स्कन्दस्वामी ने नैरुक्तों की ऐतिहासिक परम्परा को सूर्य

के प्रकाश की भाँति व्यक्ति कर दिया है। वास्तव में उसको देख कर ही अब विज्ञ-पाठकों को आचार्य दुर्ग की इतिहास विषय की धारणा को अवगत करने में कुछ भी कठिनता न होगी। यद्यपि दुर्ग की टीका में बहुत ही उत्तम उत्तम स्थल विद्यमान थे परन्तु अब तक इतनी प्रबलता से वेद के इतिहास का समाधान विस्पष्ट रीति से नहीं हो सका इस बात को निरुक्त के पढ़ने पढ़ाने वाले सभी अनुभव करेंगे।

हमारे विचार में यहाँ इतना और ध्यान में रहे कि यद्यपि स्कन्द और दुर्ग अपने अपने काल की उन रूढ़ियों से बच नहीं सके, जो उनके काल में वेदार्थ के विषय में प्रचलित थीं। यह बात इनके स्थान स्थान पर मन्त्रार्थ के देखने से ही ज्ञात हो जाती है। परन्तु यह सब होने पर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि इन दोनों आचार्यों के काल तक निरुक्त की परम्परा कुछ सीमा तक उत्तम रीति से चली आ रही थी। मेरे विचार में तो स्कन्द ने १०८ में ७५ हमारे समाधान कर दिये हैं। लगभग इतना ही दुर्ग ने भी हमारे लिए निरुक्त की प्रक्रिया का मार्ग साफ कर दिया है। शेष उनकी धारणा को तो हम भी सर्वांश में नहीं मानते। परन्तु इनके इतने महान् उपकार के लिए हमें इनका अतीव कृतज्ञ होना चाहिए।

अब सज्जनों के सन्मुख इतिहास विषय की दुर्ग की धारणा रखता हूँ—

(१) पृ० ७४४ (बम्बई संस्करण) "तत्र एत-

स्मिन्नार्थे इतिहासमाचक्षते आत्म- विदः । इति वृत्तं परकृत्यर्थवाद रूपेण यः काश्चिद् आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिकोवार्थ आख्यायते दिष्टयुदितावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते । स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षित स्वार्थः तदर्थप्रतिपत्तॄणामुपदेशपरत्वात् ।"

अर्थात—यह ऋचा आत्मगति को कहती है इस 'विश्वकर्मा भौवन' के विषय में आत्मज्ञानी इतिहास बतलाते हैं, पर कृति अर्थवाद रूप से इतिवृत्त का व्याख्यान करते हैं। जो कोई भी आध्यात्मिक-आधिदैविक आधिभौतिक अर्थ (दिष्टचुदितावभासनार्थ) ज्ञान के उदय (प्रकाश) होने के लिये प्रख्यात किया जाता है, वही इतिहास कहाता है। सो यह सब प्रकार का इतिहास निःसंशय नित्य तथा अविवाक्षितस्वार्थ होता है अर्थात् अपने मुख्य इतिहासार्थ को नहीं कहता। क्योंकि वह केवल उस अर्थ को जानने वाले लोगों के लिये केवल उपदेश परक (उपदेश मात्र) ही होता है (वास्तव में वह कोई इतिहास नहीं होता)।

(२) पृ० ५६९—"यथो एतत् पौरुषविधकैः द्रव्य संयोगैः इति । एतदपि तादृशमेव । औपचारिक

रूपकमित्यर्थः। यथैव हि आस्यादि कल्पना दृष्ट्यभि-चारित्वात्ग्रावप्रभृतिषु न सम्भवति, रूपकमात्रं स्तुत्यर्थं सङ्कल्पतो बाह्वादिकार्यसिद्धिः। एवं हरिरथ-जयादि स्तुतयो रूपकमात्रमिति।...न चास्यांस्तुतो यथाभूतार्थत्वोपपत्तिरस्ति। असम्भवात्। कथम सम्भवः ? नद्यु्दकात्मिकाया नद्या वहन्त्यारथेऽव-स्थाने सम्भवति...तदेवमादिष्वसम्भवात् मुख्यार्थ कल्पनायाः सर्वत्र रूपकप्रवादाः स्तुतय इत्युपेक्षम्।"

अर्थात्—"मूल निरुक्त में जो "यथो एतत् पौरुषविधकै। द्रव्य-संयोगैः" जो यह कहा कि पुरुष सदृश अङ्गों से स्तुति की जाती है अतः ये देवता चेतन हैं...यह भी वैसा ही है। अर्थात् औपचारिक-रूपक है। जिस प्रकार ग्रावादि में आस्यादि (मुखादि) की कल्पना सम्भव नहीं, अपितु स्तुति के लिये रूपक मात्र होती है। कल्पना से ही बाहु आदि कार्यों की सिद्धि होती है न कि वास्तविक (शृणोत ग्रावाण इत्यादि में)। इसी प्रकार हरि के रथ—जयादि की स्तुतियें रूपक मात्र हैं (वास्तविक नहीं... इस स्तुति में यथा भूतार्थ (सचमुच) ऐसा कथन नहीं। क्यों ? असम्भव होने से। असम्भव कैसे ? जलरूप चलती हुई नदी का रथ में बैठना सम्भव नहीं।"

कितना स्पष्ट लेख है जिस पर कुछ भी टिप्पणि की आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना और ध्यान रहे कि महाभाष्यकार पतञ्जलि भगवान् ने "हेतुमति च" सूत्र के भाष्य में "अचेतनेष्वचेतनवदुपचारा:" इस वार्त्तिक में "शृणोत ग्रावाण:" यही उदाहरण दिया है जिससे यह सब औपचारिक है यह स्पष्ट सिद्ध है। इसी प्रकार शान्तनु के राज्य की १२ वर्ष अनावृष्टि भी तो असम्भव ही है। अत: वहाँ भी औपचारिक ही कथन है।

(३) पृ० ५६३—"तत्रैवं सति आत्मविद आत्मनि त्रित्वनानात्वे गुणीकृत्य तदङ्ग प्रत्यङ्ग भावेन कल्पयित्वैकमात्मानं पश्यन्ति। तथा नानात्वैकत्वे नैरुक्ता इति त्रित्वे। तथा त्रित्वैकत्वे याज्ञिका नानात्वे एवमेषामविरोधा:।"

अस्ति हि शब्दार्थयोर्वक्तृप्रतिपत्तृवशेन तद्-बुद्धयपेक्षयान्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्त्तितुं शक्ति:। न तु स्वाभाविकमभिधानाभिधेयसम्बन्धमकृतकमप्रव्यावमानावभिधानाभि धेयौ जहीत:। न ह्यग्नेरवभास्यं प्रत्यवभासनशक्तिरवभास्यस्यचावभास्यमानताशक्तिर्व्यवधानमन्तरेण विहन्यत। नह्यकृतकं

स्वयमप्यधीतं को विकल्पते वैदिकानां पदवाक्य-प्रमाणानाम् ।

आत्मभावानुशयवशनात्मविन्नैरुक्तः याज्ञिकाः वेदस्याविपर्यासिनामप्यध्यात्माधिदैवाधियज्ञविषय-नियमतां अर्थाभिधानशक्तिं विपर्यासिनीमिवमन्य-मानाःपरस्पर तो विपर्यस्यन्ते ।

एतद् सर्वथापि भेदाभेदवर्सि देवतासतत्वं यथाग्रहं वक्तृप्रतिपत्तृवशेन प्रख्यातिमुपनयत् स्तुति-रूपकेणात्मोऽर्थसतत्वं तथा भूतं मन्त्रैराविष्क्रियते । तदुक्तं—"तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति" दर्शि-तच्चैतन्मन्त्रेण "न त्वं युयुत्से ......" इति । निष्ठितरूपत्वेन स्वे स्वे विषयेऽध्यात्मादौ परमार्थतया ऐकात्मये निष्ठा तदन्तत्वाद् वाचः । तदुक्तम् "यतो वाचो निवर्त्तन्ते .."

यह समग्र स्थल बड़ा ही उत्तम है । बहुत लम्बा होने से सम्पूर्ण का अर्थ न कर के भाव मात्र ही लिखा जाता है:—

आध्यात्मिक नैरुक्त-याज्ञिक आदि पक्षों में परस्पर विरोध नहीं ।

कथन के प्रकार का भेद मात्र है ·····इन वादों में शब्द और अर्थ की शक्ति वक्ता और प्रति पत्ता (बोद्धा) के बुद्धि वैशद्य के भेद से भिन्न है। स्वभाविक नित्य अकृतक अभिधानाभिधेय सम्बन्ध को शब्द और अथ नहीं छोड़ते। आत्मा के अपने २ भावों के आधीन नैरुक्त-आध्यात्मवादी और याज्ञिक लोग वेद की कभी विपरीत (विरुद्ध) न होने वाली आध्यात्म-आधिदैव-आधियज्ञ विषयक नियम वाली अभिधान शक्ति को (विपर्यासिनीमिव) परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध सी होती हुई मानते हुये भिन्न २ अर्थों का प्रतिपादन करते हैं।

··· · यह सब (यथा ग्रह) अपने अपने ज्ञानानुसार-(वक्तृप्रत्तिपत्तृवशेन) वक्ता और ज्ञाता की विद्याशक्ति के भेद से होती है। इसी से यास्क मुनि ने कहा—

"तत्रोपमार्थेन युद्ध वर्णा भवन्ति" ॥

इसीको मन्त्र बताता है। भिन्न २ विषयक मन्त्र होते हुये भी परमार्थ से (प्रधानतया] एक "ब्रह्म" में परिसमाप्ति है। क्योंकि वाणी की परिसमाप्ति भी अन्ततोगत्वा उसी में होती है। जैसा कि उपनिषद में कहा—"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" दुग के ये शब्द ऋषि दयानन्द की वेद सम्बन्धी धारणा को पुकार २ कर सर्वांशेन पूर्ण रीति से पुष्ट कर रहे हैं। इसको विज्ञ महानुभाव भली प्रकार समझ सकते हैं—

(४) पृ० ७२२— "ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता ...."

इसकी व्याख्या में दुर्गाचार्य का लेख निम्न प्रकार है—

"अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषयः।"

अर्थात्—यास्क के "ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता" का यही अभिप्राय है कि मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ भी होता है वह भी उनका विषय होता है। यहाँ 'अपि' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है।

जिन मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ दर्शाया जाता है उनका अन्य भी अर्थ है यह दुर्ग के लेख से स्पष्ट है। दुर्ग के शब्दों में मन्त्रों का ऐतिहासिक अर्थ भी होता है। यह यास्क मुनि को यहाँ अभिप्रेत है।

यहाँ पर इतना ध्यान रहे कि यह सब इतिहास औपमिक है, तथा नित्य पदार्थों का वर्णन गौणतया औपचारिक रूप से वर्णित है यह दुर्ग का मत है।

८—दुर्ग के शेष स्थल

अब हम दुर्गाचार्य के भिन्न भिन्न उपयोगी स्थल अति संक्षेप से दर्शाते हैं। जिस से यह भली प्रकार व्यक्त होता है कि वह वेद में

अनित्य व्यक्तियों का इतिहास न मान कर वेद के अर्थ को नित्य मानते हुये नित्य इतिहास का ही प्रतिपादन करते हैं—

(५) पृ० ७९५—(१) "सरमा" का अर्थ निरुक्त में देव शुनी = देवताओं की कुतिया लिखा है। निरुक्त का लेख इस प्रकार है—

"देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूहे इत्याख्यानम्।"

दुर्ग कहते हैं—

"इत्याख्यानविद एवंमन्यन्ते। वाक् पक्षे तु सरमा माध्यमिका वाक्। वाक् पक्षे तु चिरकालीन वृष्टिव्युपरमे कदाचिदभिनव मेघसंप्लवे सहसैव स्तनयित्नुमुपश्रुत्य कुत इयं माध्यामिका वाक् चिरेणागतेति विस्मितस्तामसूयन्निव ब्रवीति······ किमिच्छन्ति सरमा······ ऋ० १०-१०८-१।"

यहाँ 'सरमा' का अर्थ मध्यमस्थानी वाक् किया है।

२ पृ७ १४५—युद्ध वर्णाभवन्ति। युद्धे रूपकाणी-

त्यर्थ। नह्यत्र यथा भूतं युद्धमस्ति । नहीन्द्रस्य शत्रवः केचन सन्ति ॥"

३ पृ० २८७—"ऐतिहासिक मतेन नित्यार्थं प्रदर्शितवान् ।"

४ पृ० १३४—"निरुक्त पक्षे ऋष्टिषेणो मध्यम-···शन्तनवे सर्वस्मै यजमानाय।"

५ पृ० ३१५—"मन्त्रार्थपरिज्ञानादेव ह्यग्नेराध्यात्माधिदैवाधिभूताधि यज्ञेष्ववस्थानं याथात्मयतो-दृश्यते ।"

६ पृ० ३९५—"उर्वशी का अर्थ विद्युत पूर्ववत् किया गया है ।"

७—१—"कोऽयमग्निः ।·······आत्मा इत्यात्मविदः ।·······अविवक्षितस्थानविशेषो निर्ज्ञातैतदभिधानो देवताविशेषो लोकवेदप्रसिद्धः कर्माङ्गमिति याज्ञिकाः । विवक्षितविशिष्टस्थान कर्मा मध्यमोत्तमाभ्यां ज्योतिर्भ्यामन्यः पार्थिवो अयमग्निरीति

नैरुक्तसमयः .... आत्मवित् पक्षेतु सर्व-मभिधान मात्मार्थमेवेति सर्वावस्थं विभूति ताद्-भाव्यमनुभवतीति सर्व पदव्युत्पत्तिप्रयोजनम्।"

अर्थात्—अग्नि कौन है? आत्मविदों के मत में "अग्नि" का अर्थ है आत्मा। याज्ञिकों के मत में "अग्नि" यज्ञ कर्म का अङ्ग भूत है। नैरुक्तों के मत में उसको पार्थिव अग्नि कहा गया है। आध्यात्म पक्ष में तो यह सब कुछ कथन उपकथनादि आत्मा के लिये ही है। सब में स्थित हुई 'आत्मा' की विभूति की अनुभव करता है, सब पदों की व्युत्पत्ति का यही प्रयोजन है।

दूसरे शब्दों में "अग्नि" आदि शब्दों की प्रकृति प्रत्यय की त्रिविध कल्पना द्वारा व्युत्पत्ति-निर्वचन जो यास्क ने दिखाया है जो इस ग्रन्थ का मुख्य ध्येय है वह इन "अग्नि" आदि शब्दों से एक "आत्मा" का अर्थ संघटित करने के लिये ही है।

यहाँ पर कुछ अविवेकी लोग—व्याकरण तथा निरुक्त की प्रक्रिया को न समझते हुये कहते हैं कि "अग्नि" शब्द की व्युत्पत्ति में **अग्नि कस्माद्? अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। अङ्गं नयति सन्नममानः। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः। न क्नोपयति न स्नेहयति।**

....इतादक्ताद् दग्धाद्वा नोतात् ।....इत्यादि"

इत्यादि यास्क के लेख पर कहते हैं कि यास्क को स्वयं निश्चय नहीं था कि कौन से धातु से अर्थ करूँ। सन्देह में अनेक धातु गिना दिये।

दुर्ग का यह लेख—

"सर्वाभिधानमात्मार्थ मेवेति सर्वावस्थं विभूति तादभाव्यमनुभवतीति सर्वपद व्युत्पत्ति प्रयोजनम्"।

अर्थात्—सब पदों को व्युत्पत्ति—निर्वचन का प्रयोजन सब अभिधान (कथन) को एक आत्मा में संघटित करने के लिये।

यही तो यौगिक प्रक्रिया है। नैरुक्त परम्परा के जानने वाले आचार्य इस को कितना महत्व देते चले आरहे हैं। इसी को आधार बना कर ऋषि दयानन्द ने तम आच्छादित वेदार्थ को संसार के आगे रखा। इसके बिना और कोई प्रक्रिया हो ही नहीं सकती जिस से वेदत्व सिद्ध हो सके। सम्पूर्ण निरुक्त इस क्रिया को आधार बना कर ही प्रवृत्त हुआ है यह हम पूर्व दर्शा चुके हैं।

(८) "विश्वानर विद्यायां तावत् आत्मा

इत्यात्मविदः—इन्द्रादित्य-वायु आकाशउदक-पृथिव्यादयश्च पृथक् पृथगेव वैश्वानरत्वेन विज्ञायन्ते" । पृ० ६०२ ।

अर्थात्—विश्वानर आत्मवादियों के मत में आत्मा है—इन्द्र, आदित्य, वायु, आकाश, उदक, पृथिवी आदि पृथक् २ विश्वानर रूप से जाने जाते हैं (ब्राह्मणादि ग्रन्थों में) ।

(९) "भक्तिमात्रं भवति तत् गुणतः संवादः दुर्बला हि समाख्या ।"

(१०) "आत्मस्तुति रेवेयं सर्वा" । पृ० ६७६ ।

"त्रित्वपक्षे (यमी) माध्यमिको यमो माध्यमिकां वाचम् ।" पृ० ८०४

"ऐतिहासिक पक्षाभिप्रायोऽयमर्थवादः ।" पृ० ८३५

"रश्मयोहि विश्वेदेवाः ।" पृ० ११

इत्यादि इतने स्थल हैं कि हम सब को उद्धृत नहीं कर सकते । अन्त में एक विशेष उद्धरण देकर दुर्ग का विषय समाप्त करते हैं ।

९—वेदार्थ में दुर्ग की धारणा

वेदार्थ में दुर्ग की धारणा क्या है इसका दिग्दर्शन निम्न लेख से भली भाँति हो जाता है—

(६) पृ—

"तत्रैव सति प्रति विनियोगमस्यान्येनार्थेन भवितव्यम् । त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यत्वमपि भजन्ते मन्त्राः । न ह्येतेषु अर्थस्येयत्तावधारण-मस्ति । महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च । यथा ह्वा-रोह वैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतरश्च वहति, एव मेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् प्रवहन्ति ॥

तत्रैवं सति लक्षणोद्देशमात्रमेवैतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचन मेकैकस्य क्रियते । क्वचिच्च आध्यात्मा-धिदैवाधियज्ञोपदर्शनार्थम् ।

तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन्-आधिदैवा ध्यात्माधियज्ञाश्रयाः सर्व एव ते योज्याः । नात्रा-पराधोऽस्ति ॥"

(२) "ईदृशेषु शब्दार्थ न्याय सङ्कटेषु मन्त्रार्थ घटनेषु दुरवबोधेषु मतिमतां मतये न प्रतिहन्यते, वयं त्वेतावदत्रावबुध्यामहे ॥" पृ० ६२४

अर्थात्—ऐसी अवस्था में विनियोग—के भेद से इस का भिन्न २ अर्थ होगा। सो यह मन्त्र वक्ता के अभिप्राय भेद से भिन्नता को भी प्राप्त हो जाते है। अथोत् इस से घबराने की कोई बात नहीं।

इन मन्त्रों का बस इतना ही अर्थ है इसकी कैद नहीं लगाई जा सकती। यह मन्त्र महान् अथ वाले हैं अत्यन्त ही दुष्परिज्ञान-—बड़े ही परिश्रम-विद्या-योगादि की शक्ति स जाने जा सकते हैं। जैसे सवार सवार के भेद से घोड़ा अच्छा और अतीव अच्छा चलने लगता है। इसी प्रकार वक्ता जितना अधिक योग्य और तपस्वी होगा उसके दर्शाये वेदार्थ से भी उतने ही अधिक साधु और साधुतर अर्थों का प्रकाश होगा। आज कल के वेद भाष्य कार इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं—क्योंकि स्वयं यास्क ने भी तो कहा है—

"नहयेषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्या प्रशस्यो भवेति ......॥" १३ नि०

इस प्रकार निरुक्त शास्त्र में लक्षणोद्देश मात्र (लक्षणों को दर्शाने के लिये संकेत मात्र) ही एक एक शब्द का निर्वचन दिखाया गया है। कहीं कहीं आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधियज्ञ-

अर्थों का बोध कराने के लिये शब्दों का निर्वचन दिखाया है।"

अतः इन मन्त्रों में जितने भी अर्थ उपपन्न (युक्त) हो सकें चाहे वे आध्यात्मिक आधियज्ञादि हों उन सब की योजना कर लेनी चाहिये। इसमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं।"

(२) "इस प्रकार शब्दार्थ के निर्णय में संकट उपस्थित होने पर जहाँ पर भी मन्त्रों के दुखबोध अर्थों को यथावत् घटाना होता है। वहां बड़े बड़े बुद्धिमानों की बुद्धियाँ प्रतिहत नहीं होती—नहीं रुकती—हम तो यहाँ पर इतना ही समझ सके हैं।"

इस ऊपर के लेख से दुर्ग का वेदार्थ सम्बन्धी हृदय इतना स्पष्ट है कि इस पर कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं, ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे स्वयं ऋषि दयानन्दजी ही बोल रहे हों। एक एक शब्द में ऋषि दयानन्दजी की वेदार्थ प्रक्रिया की पुष्टि हो रही है।

हज़ारों ग्रन्थों को पढ़कर लगभग ३ हज़ार ग्रन्थों को प्रमाणिक मानने वाले दयानन्द की अगाध बुद्धि का परिचय हम साधारण बुद्धि वालों को तभी होता है जब हमें उनकी धारणा के सम्बन्ध में उनसे पूर्वाचार्यों का कोई प्रमाण मिल जाता है। हम लोगों की

अपना कोई स्वतन्त्र बुद्धि नहीं अपितु हमने अपनी बुद्धि को इन लोगों के हाथ बेच सा दिया है।

"गतानुगति को लोकः न लोकः पारमार्थिकः" दयानन्द में यह बात नहीं थी। उनकी हरएक धारणा शास्त्र प्रमाण तथा तर्क के आधार पर थी। कोई भी निराधार नहीं थी। और जितना जितना हम अधिक प्राचीन ग्रन्थों की खोज करेंगे उसकी अधिक से अधिक पुष्टि पावेंगे।

क्या अब मूल निरुक्त के प्रमाणों से यास्क के नित्य इतिहास का स्वरूप सूर्य की भाँति स्पष्ट नहीं ? उसके पीछे 'आचार्य वररुचि' के "निरुक्त समुच्चय" से वही बात स्पष्ट नहीं होती ? क्या नैरुक्तों की परम्परा जिसे आचार्य स्कन्दस्वामी और दुर्ग ने दिखाया उससे इस बात के मानने में यत् किञ्चित् भी सन्देह करने का स्थान रह जाता है ? हम समझते हैं "निरुक्तकार वेद में (अनित्य इतिहास मानता है।" इस वाद की अन्त्येष्टि ही कर देनी चाहिये।

शेष रह जाता है निरुक्त के सब ऐतिहासिक स्थलों की पर्यालोचना का क्या किया जाये। मेरे पास इतना समय नहीं तथापि इस विषय के कुछ स्थल विस्तार से अवकाश मिलने पर विद्वानों की सेवा में उपस्थित करने का पूरा यत्न किया जायगा।

यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रभु की कृपा से उन स्थलों पर बहुत कुछ विचार किया जा चुका है। उनके पक्षपात रहित पूर्ण समाधान होने में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं। परन्तु यह समझा तभी जायगा जब यह कार्य विद्वानों की सेवा में उपस्थित होगा।

१०—वैद्यक शास्त्र और इतिहास

जैसा हमने पूर्व कुमारिल भट्ट के तन्त्र वा० पृ० १४७ का लेख—

"तस्माद्ये याज्ञिकैर्येषां वैद्यैर्वार्था निरूपिताः।
तेषां त एव शब्दानामर्था मुख्याः हि नेतरे॥"

अर्थात्—वैद्यक की प्रक्रिया से भी वेद मन्त्रों के अर्थ होते हैं। सो इस विषय में मैं विद्वानों के मनोरञ्जनार्थ एक विचार उपस्थित करता हूँ—

देखिये वैद्यक शास्त्र में सुश्रुत सूत्रस्थान ५ अध्याय में जहाँ भिन्न-भिन्न देवताओं का वर्णन किया गया है लिखा है—

"एता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवताः।
एता स्त्वां सततं पान्तु दीर्घमायुरवाप्नुहि" ॥२५॥

इसकी टीकमें निम्न लेख है—

यास्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहङ्कारः सः।....रुद्रो

रोषः। सोमः प्रसादः। वसवः सुखम्। अश्विनौ कान्तिः, मरुदुत्साहः, तमोमोहः, ज्योतिर्ज्ञानम्.......॥

अर्थात्—लोक में जो इन्द्र है—पुरुष अहङ्कार है। रोष-रुद्र है। सोम नाम है प्रसाद का प्रसन्नता का। वसवः सुख का नाम है। कान्ति का नाम अश्विनौ है। उत्साह का नाम मरुत है। मोह तम है। ज्ञान ही ज्योति है। इत्यादि।

इससे भी स्पष्ट इन्द्र—रुद्र—अश्विनौ आदि व्यक्ति विशेषों के नाम नहीं अपितु शरीर में भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं।

११—वैदिक गाड्ज़ (Vedic Gods) और इतिहास

इस नाम की एक पुस्तक अंग्रेजी भाषा में कलकत्ता से प्रकाशित हुई है जिसके लेखक श्री रेले महाशय हैं। उन्होंने वेदों के मन्त्रों को लेकर उनसे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अश्विनौ-मरुत आदि शरीर सम्बन्धी भिन्न भिन्न शक्तियाँ तथा नाडी आदि अवयव हैं। जो भिन्न भिन्न कार्य करती हैं। सज्जनों के विनोदार्थ हम कुछ विचार उसके देते हैं—

उक्त ग्रन्थ में क्रमशः लगभग २० देवताओं पर विचार किया गया है—१. त्वष्ट २. ऋभवः ३. सविता ४. अश्विनौ ५. मरुत

६. पर्जन्य: ७. उषा ८. विष्णु ९. रुद्र १०. पूषा ११. सूर्य १५. अग्नि १३. इन्द्र १४. आदित्य १५. बृहस्पति १६. साम १७. वरुण १८. मित्र १९. आप:

ग्रन्थकार ने इन देवताओं को शरीर में ही घटाने का प्रयास किया है। केवल कल्पना मात्र से नहीं अपितु तत्तद् विषय में ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों का भी प्रमाणत्वेन दिया है। जिससे लेखक की वेद विषय में अच्छी योग्यता प्रतीत होती है। उसमें विभिन्न देवताओं का स्वरूप यों दिया है—

पृ० ७८—पूषा को सैरी बेलम् (छोटा दिमाग़)
,, ९५—इन्द्र को सैरी ब्रम (बड़ा दिमाग़)
,, ५४—मरुत: को क्रेनियल नर्व्ज (दिमाग़ की नाड़ियाँ—तन्तु)
,, ५८—पर्जन्य को Reflex Activity बाह्य संस्कारों से प्रतिबिम्बित प्रेरेता।
,, ६२—उषा को वेगस नर्व्ज (हृद् और श्वास प्रश्वास का केन्द्र)
,, ६७—विष्णु को स्पाइनल काड (रीढ़ की अन्दर की सुषुम्णा)
,, ७५—रुद्र को पौन्ज (ज्ञान तन्तुओं का एक Pons समूह)
,, ८३—सूर्य को कार्पस स्ट्राइएटम (प्रेरक मुख्य ज्ञान तन्तु)

,, ८६—अग्नि को थैल्मस (अनुभव करने वाले मुख्य ज्ञान तन्तु समूह)

,, १०५—अदिति को दिमाग़ का एक भाग (मध्यवर्ती प्रेरक)

,, ११८—बृहस्पति को Speech center.

यह सब व्याख्या वेद मन्त्रों के आधार पर की है। कैसी उत्तम योजना है। वास्तव में जब तक वेदाङ्ग-उपाङ्ग-आयुर्वेद-धनुर्वेद-अर्थवेद-गान्धर्ववेद इत्यादि में प्रतिपादित शिल्पादि क्रिया-ज्योतिष्-औषध-गानादि का पूर्ण ज्ञान नहीं होता तब तक वेदार्थ बालकों का खेल नहीं है जो पुस्तक उठाई भाष्य रच डाला। वास्तविक वेदार्थ का प्रकाश तभी हो सकेगा जब अङ्गों-उपाङ्गों तथा उपवेदादि का प्रौढ़ता से ज्ञान प्राप्त करने की योजना की जायेगा।

उपर्युक्त Vedic Gods नामक ग्रन्थ आङ्गल भाषा जानने वालों को अवश्य पढ़ना चाहिये। ऐसे ग्रन्थों का आर्य भाषा में भी अनुवाद होना चाहिये। कोई योग्य डाक्टर और वेद विषय को समझने वाले इस पर सम्भवतः अधिक प्रकाश डाल सकते हैं।

१२— स्वामी दयानन्द और ऐतिहासिक पक्ष

ऋषि दयानन्द ने वेद पर अपने अपूर्व ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में निम्न प्रकार इस विषय में अपनी धारणा लिखी है—

(१) "एवमेव ब्रह्म वैवर्त्तादिषु मिथ्यापुराणसंज्ञासु

किंच नवीनेषु मिथ्याभूता बह्वयः कथालिखिताः ... तासां...सविता सूर्यः...स तस्य पितृवदिति रूपकालङ्कारोक्ताः। अस्यां परमोत्तमायां रूपकालङ्कार विधायिन्यां निरुक्त ब्राह्मणेषु व्याख्यातायां कथायां सत्यामपि ब्रह्म वैवर्त्तादिषु भ्रान्त्या यः कथा अन्यथा निरूपितास्ता नैव कदाचित् केनापि सत्या मन्तव्याः।" ऋ० भा० भू० पृ० ३००

पृ० ३०४—जो यह रूपकालङ्कार की कथा अच्छी प्रकार वेद-ब्राह्मण और निरुक्त आदि सत्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। इसको ब्रह्म वैवर्त श्रीमद् भागवतादि मिथ्या ग्रन्थों में भ्रान्ति से बिगाड़ के लिख दिया है तथा ऐसी ऐसी अन्य कथा भी लिखी हैं। उन सब को विद्वान लोग मन से त्याग ये सत्य कथाओं को कभी न भूलें।

(२) पृ० २०६—"ईदृश्यः प्रमत्तगीतवत् प्रलपिताः कथाः पुराणभाषादिषु नवीनेषु ग्रन्थेषु मिथ्यैव सन्तीति भद्रैर्विद्वद्भिर्मन्तव्यम्। कुतः? ॥ एतासामप्यलङ्कारवत्वात ॥" पृ० ३०६।

(३) पृ० ३१३—"एवं परमोत्तमायां विद्या-

विज्ञापनार्थायां रूपकालङ्कारेणान्वितायां सत्यशास्त्रेषूक्तायां कथायां सत्यां, व्यर्थं पुराणसंज्ञकेषु नवीनेषु तन्त्रादिग्रन्थेषु या मिथ्यैव कथावर्णिताः सन्ति, विद्वद्भिर्नैताः कथाः कदाचिदपि सत्या मन्तव्याः इति ।"

(४) पृ० ८६—"अतो नात्र मन्त्रभागे हीतिहासलेशोऽप्यस्ती त्यवगन्तव्यम् । अतो यच्चसायणाचार्यादिभिः वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद्भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम् ।"

अतः यहाँ मन्त्र भाग में इतिहास का लेश भी नहीं है ऐसा समझना चाहिये। इसलिये जा सायणाचार्यादिकों ने अपने भाष्यों में जहाँ कहीं इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रम के कारण ही है ऐसा जानना चाहिये।

ऋषि दयानन्द की घोषणा कैसे प्रबल शब्दों में है। हमारा उपर्युक्त सम्पूर्ण लेख वस्तुतः ऋषि की इस धारणा की पुष्टि के निमित्त ही लिखा गया है। एक भो शब्द प्रमाण रहित नहीं।

दयानन्द की यह धारणा कितनो सत्य है इसका साक्षी हमारा ऊपर का सम्पूर्ण लेख दे रहा है। अधिक क्या ?

निरुक्त और आर्यसमाज

इस शा।र्षक से हम जो अपने लेख के प्रथम भाग में लिख चुके हैं कि श्रद्धेय श्रा० प० शिवशङ्करजी काव्यतोर्थ ने निरुक्त के विषय म जा धारणा लिखी (पृ० ८३) कि "। नहीं कह सकता कि यास्काचार्य के समान विद्वान् प्रामाणिक ग्रन्थां (ब्राह्मणों को छोड़ क्यों वेदों पर कलक लगा गये ।" इस धारणा का परित्याग हो जाना चाहिये । इसमें मैं मब प्रमाण विस्तार से दे चुका हूँ । ऋषि दयानन्दजी महाराज का लेख भा उद्धृत कर चुका हूँ । स्पष्टार्थ पुनः लिखता हूँ ।

ऋग्वेदादि भा० भू० पृ० ३०० पर लिखा है--

"अस्यां परमोत्तमायां रूपकालङ्कारविधायिन्यां निरुक्त ब्राह्मणेषु व्याख्यातायां कथायां सत्यामपि ब्रह्मवैवर्त्तादिषु भ्रान्त्या याः कथा अन्यथा निरूपितास्ता नैव कदाचित् केनापि सत्या मन्तव्या ।"

अर्थात्—निरुक्त तथा ब्राह्मण ग्रन्थों मे रूपकालङ्कार से परमोत्तम कथाओं की व्याख्या है। इस लेख से स्वामी दयानन्दजी महाराज निरुक्त मे आई हुई कथाओं को रूपकालङ्कार युक्त मानते हैं ।

ऋषि के इस लेख तथा उपर्युक्त सब प्रमाणों से यास्क का निरुक्त हेय है, इस धारणा का हमें परित्याग ही कर देना होगा ।

सायणाचार्य तथा ऐतिहासिक पक्ष

हमें बहुत यत्न करने पर भी सायणाचार्य के भाष्य में स्कन्द स्वामी की ऐतिहासिक प्रक्रिया का स्वरूप दृष्टिगत नहीं हुआ। हमें अत्यन्त आश्चर्य होता है कि सायणाचार्य ने अपने से पूर्ववर्त्ती महाविद्वान् आचार्य स्कन्द स्वमामी भट्ट भास्कर-उद्गीथ-वेंकट माधव-आत्मानन्द तथा अन्य अनेक आचार्यों का उल्लेख तक नहीं किया। उनके समय ये सब आचार्य सर्वथा अज्ञात अवस्था में हों यह बात साधारण बुद्धि भी नहीं मान सकती। उसने केवल माधव का नाम ही लिखा है। इससे सायणाचार्य के भाव की क्षुद्रता प्रतिभासित होती है या नहीं यह विद्वान् स्वयं विचार सकते हैं। हम कह सकते हैं यदि वह अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों की परम्परा गत इन प्रक्रियाओं को लेकर भाष्य करते तो संसार में वेदार्थ के विषय में इतना अन्धकार न होता।

जिन लोगों को सायणाचार्य ही वेद के अपूर्व विद्वान् दृष्टिगत होते हैं। उनका भाष्य ही सुसङ्गत-सुसम्बद्ध और सोपपन्न जान पड़ता है वह किञ्चित् चक्षु खोल कर इस विषय में देखें कि इनसे पूर्वाचार्यों ने वेदार्थ को कहाँ तक व्यक्त किया है।

वेद को ऐतिहासिक प्रक्रिया सायणाचार्य की समझ में ही नहीं आई यही विवशतः कहना पड़ता है। यदि समझ में आई होती तो वह अवश्य इसका व्याख्यान करते।

यास्क के अनेकवाद

यह बात तो सभी विद्वान् स्वीकार करेंगे कि यास्क ने अपने निरुक्त में अनेकवादों का उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार है—

१—आध्यात्मम्	लगभग १०-१२ स्थलों में
२—आधिदैवतम्	,, ,, ,,
३—आख्यान समय }	,, १९ स्थलों में
४—ऐतिहासिकाः }	
५—नैदानाः	
६—नैरुक्त पक्ष	२० स्थलों पर
७—परिव्राजक मत	१ स्थल पर
८—पूर्वे याज्ञिकाः	१ ,, ,,
९—याज्ञिकः	८ स्थलों पर

ऐतिहासिक-नैदान और आख्यान समय इन तीनों पर (जो वास्तव में अति स्वल्प भेद होते हुए एक ही पक्ष है) पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। परिव्राजक और अध्यात्म लगभग एक ही है। इनकी तथा नैरुक्त पक्षों की व्याख्या उन्हीं वादों से हो जाती है। अर्थात् प्रवक्तृभेद से दर्शन भेद होता है। इस विषय

की बहुत सामग्री अनेक आचार्यों के मत से दर्शा दी गई है। मन्त्रों के आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधियाज्ञिक भी अर्थ होते हैं। इस विषय की अनेक साक्षियाँ ऊपर दी गई हैं। इन सब वादों में वेद मन्त्रों के अर्थ होते हैं यह सब वैदिक धर्मियों को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं।

निरुक्त के शेष ऐतिहासिक पक्ष

ऐसे ऐतिहासिक स्थल जिनकी योजना इन पूर्वोक्त स्कन्द तथा दुर्ग आदि आचार्यों ने नहीं दर्शाई उनको हम क्रमशः पृथक् निबन्ध द्वारा दिखाने की इच्छा रखते हैं। अवकाश तथा समुपयुक्त सामग्री प्राप्त होने पर (जिसमें बहुत सी हो चुकी है) हम सम्पूर्ण निरुक्त पर ही विचार उपस्थित करना चाहते हैं।

"ईश्वराधीनं सर्वम्" प्रभु की कृपा से ही ऐसे महान् कार्य पूरे हो सकते हैं। अतः वह 'बलदा' परमात्मा बलप्रदान करें, जिससे ऋषियों के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हुये प्रभु की पतित-पावनी वेदवाणी का सत्यस्वरूप संसार मे विस्तार हो। यही उस प्रभुः से पुनः पुनः प्रार्थना है।

उपसंहार

उपर्युक्त प्रकरण में हमने निम्न बातें स्पष्ट करने को यत्न किया है—

निरुक्त में अनेक स्थलों पर यास्क ने ऐतिहासिक पक्ष दिखाया है, पर वह सब उपमार्थ-ऋषियों की आख्यान कहने की प्रीति से है। ब्राह्मणों में विश्वामित्र-जमदग्नि वसिष्ठादि शब्द जड़ पदार्थों-प्राण आदि के लिये स्पष्ट कहे गये हैं। निरुक्त के पीछे प्राचीन नैरुक्त आचार्य वररुचि ने—"**औपचारि को मन्त्रेऽख्याख्यान समय इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः।**"

मन्त्रों में आख्यान-इतिहास औपचारिक है यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है। यह घोषणा स्पष्ट शब्दों में की है। इस स्पष्ट घोषणा के इन्हीं शब्दों को वर्तमान उपलब्ध वेद भाष्य कारों में सर्वतः प्रथम आचार्य स्कन्दस्वामी ने खुले शब्दों में घोषित किया और एक प्रकार से अपने निरुक्त भाष्य में इसी घोषणा-धारणा का सवत्र अवलम्बन कर इतिहास की लुप्त प्रक्रिया को संसार में पुनः जीवित कर दिया जिसके लिये हमें उसका अति कृतज्ञ होना चाहिये।

दुर्ग ने भी इसी औपचारिक प्रक्रिया का अनेक स्थलों में परिपालन किया। इन दोनों आचार्यों के अनेक प्रमाण दर्शाये गये। जिन से किसी को भी निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है इस विषय का सन्देह नहीं रह जाता है। हाँ, हठधर्मी दूसरी बात है।

अन्तिम निवेदन

हाँ, अन्त में हम एक बात और कह देना आवश्यक समझते हैं कि निरुक्त के सभी स्थल हमने पूर्ण रीति से जगा लिये हैं यह बात नहीं है। हाँ, ऐतिहासिक पक्ष के विषय में हमें कुछ भी सन्देह नहीं। अन्य विषय के कुछ स्थल विचारणीय अवश्य हैं। पर वह वैसे ही हैं जैसे अन्य ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में कहीं कहीं पर विचारणीय स्थल हैं। वह सब भी अन्य आर्ष ग्रन्थों की भाँति धीरे धीरे निःसंशय हो सकेंगे। ऐसी हमें पूरी आशा है।

अब निरुक्त से पूर्व वेदार्थ की क्या व्यवस्था थी ? यास्क की वेदार्थ प्रकिया का उद्गम स्थान क्या है ? निघण्टु, निरुक्त की आवश्यकता ही कैसे हुई ? वर्तमान व्याकरण की प्रक्रिया को यास्क ने क्यों ग्रहण नहीं किया ? इत्यादि और भी अनेक विचार निरुक्त के विषय में हो सकते हैं। पर मैं ने इन विषयों को अपने प्रकृति विषय में अधिक उपयोगी न समझ कर ही छोड़ दिया है। जिस पर पुनः किसी समय विचार हो सकता है।

(यह दूसरा भाग आर्य-विद्वत्सम्मेलन में जितना पढ़ा गया था उतना उपस्थित है, शेष लगभग १२ पृष्ठ जिसमें अनेक प्राचीन आचार्यों की साक्षी द्वारा इस विषय में अनेक प्रमाण दिये गये थे समयाभाव से लेख सुनाते छोड़ देना पड़ा। आवश्यकता हुई तो पुनः कभी उपस्थित किया जा सकेगा। इस विषय में जिस किसी को कुछ प्रष्टव्य हो वह लेखक से पत्र द्वारा विचार कर सकते हैं—लेखक)